International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 15-06-2026, Accepted: 15-07-2026, Published: 30-07-2026
Volume 12, Issue 3, 2026, Page No. 55-58

स्त्री–विमर्श सम्बन्धी चिंतन और हिंदी साहित्य

दिपाली गंगवार
शोधार्थी, हिंदी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय, उत्तर प्रदेश, भारत
DOI: https://doi.org/10.66856/ijhr.2026.12.3.12204

सारांश
स्त्री–विमर्श की वैचारिकी वर्तमान समय में अत्यंत प्रासंगिक होती जा रही है, जिसमें स्त्री अस्मिता के प्रश्नों को यथार्थ की कसौटी पर रखते हुए विमर्श चिंतकों ने मूल्यांकन करते हुए पाया कि इसकी जड़े तत्कालिक न होकर आदिकालीन हैं। जिसमें विभिन्न विख्यात एवं आविख्यात रचनाकारों ने स्त्री विमर्श के प्रश्नों के जवाब अपने अनुकूलता के अनुरूप दिये हैं, लेकिन आधुनिक काल में आकर पाश्चात्य स्त्री चिंतको की वैचारिकी ने स्त्री चिंतन को नया आधार प्रदान किया जिसके माध्यम से हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श के आलोचकों और रचनाकारों ने भारतीय स्त्री की स्थिति और दशा को वास्तविक रूप में प्रकट किया, जिसके कारण हिंदी कथा साहित्य और कविता की विधा धनी हुई है, वस्तुतः अब हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श को एक आधार मिल चुका है लेकिन अभी भी स्त्री विमर्श के कुछ प्रश्न यथावत बने हुए हैं, जिन पर विचार विमर्श करने की और साथ ही अब तक के स्त्री चिंतन को पुनः आधुनिक स्थितियों की कसौटियों पर देखने आवश्यकता है।

मूल शब्दः स्त्री विमर्श, अस्मिता, स्त्री शिक्षा, आधुनिक, चिंतन, परंपरा, अंतर्विरोध, पितृसत्ता, सिद्ध, समाज, संस्कार

वर्तमान काल में 'स्त्री विमर्श' काफी चर्चित विषय है जिस पर विभिन्न संदर्भों में चर्चा समय– समय पर होती रही है। स्त्री विमर्श के केंद्र में 'अस्मिता' से जुड़े मुद्दे हैं। यह एक विचारधारा है, जिसके माध्यम से स्त्रियों के हित पर विचार किया जाता है। 'विमर्श' शब्द विचार व अभिव्यक्ति से जुड़ा है, "विमर्श शब्द का अर्थ होता है, अभिव्यक्ति के उन तत्वों या पहलुओं की संरचना जो कुल जोड़ से भी परे जाकर कोई खास अर्थ देने की क्षमता रखते हो।"[1] इस प्रकार विमर्श यानी किसी समस्या पर एकपक्षीय दिशा में विचार न करके उसको समग्रता में विभिन्न दृष्टिकोण से मूल्यांकित करना। स्त्री विमर्श समाज में रूढ़ हो चुकी मान्यताओं, परम्पराओं के प्रति असंतोष एवं उससे मुक्ति का स्वर है।

भारतीय समाज में नारी की स्थिति अंतर्विरोधों से तनावग्रस्त रही है, इक्कीसवीं सदी तक आते–आते इसकी स्थिति में सुधारात्मक असार दिखने आरंभ हुए। किंतु ध्यानपूर्वक देखने पर ये विचारधारा वर्तमान में भी पूर्णतया स्थायित्व प्राप्त नहीं कर सकी। इसका एकमात्र कारण स्त्री को देह से परे न देख पाने की समस्या है। हिंदी साहित्य के प्रारंभिक दौर में स्त्री दैहिक विषय थी, जिसको सौंदर्यात्मक वस्तु के रूप में केंद्रित किया जाता रहा। यह समस्या वर्तमान समय में भी व्याप्त है, आज भी अनगिनत प्रेम कविताएं ध्वस्त हो जाए अगर उससे स्त्री देह को निकाल दिया जाए। भारतीय समाज को बौद्धिकता के स्तर में बढ़ोतरी करने की आवश्यकता है, जिससे स्त्री को देह से परे देख पाने की समझ विकसित हो सके। साहित्य में स्त्री की स्थिति को देखते हुए प्रभा खेतान कहती हैं, "नारीवाद न मार्क्सवाद है और न पूंजीवाद। स्त्री हर जगह है, हर वाद में है, फैलाव में है, मगर संस्कृति की विस्तृत फलक पर आज भी वह वस्तु करण की शिकार है, वस्तुकरण की इस पारंपरिक प्रक्रिया को पुरुष दृष्टि से नहीं बल्कि स्त्री दृष्टि से देखने और समझने की ज़रूरत है।"[2]

भारतीय समाज 'पितृसत्तात्मक' ढांचे पर आधारित है, इसकी जड़े भीतर तक समाज में पैठी हुई है, जिसे ध्वस्त कर पाना अत्यंत कठिन है। इसी समाज से उपजा साहित्य भी इस विचारधारा से अछूता नहीं रह सका। सामान्यतः यह दृष्टि रही है कि स्त्री विमर्श आधुनिक काल से आरंभ माना जाता है जबकि ऐसा नहीं है इसके बीज आदिकाल से ही अंकुरित होने शुरु हो गए थे जो मध्यकाल से आधुनिक काल तक जड़े पसारते गए। यह विकास स्पष्टता दिखाई देता है जिस पर तथाकथित आधुनिक स्त्री विमर्शकारों की दृष्टि नहीं गई है।

हिंदी साहित्य का आदिकाल वीरगाथाओं, चारण काव्यों व रासो काव्यों के रूप में फलित है। वीर रस और श्रृंगार रस दोनों ही तात्कालीन समय के प्रधान रस रहे हैं, जिनके परिणाम ग्रंथों में पाए जाते हैं। इस काल की सामाजिक परिस्थितियां स्त्री के लिए उपयुक्त नहीं थी क्योंकि राजा–महाराजा स्त्रियों के कारण भी युद्ध किया करते थे। जहां काव्यों में वीर रस की पंक्तियां राजाओं की प्रशंसा में पंक्तिबद्ध की जाती थी वहीं "जाकी बिटिया सुन्दर देखी ताहि पै जाए धरै तलवार" जैसी पंक्तियां आदिकाल में स्त्रियों के उपलक्ष्य में चिंतनीय सामाजिक परिस्थितियों को उजागर करती हैं।

आदिकाल में सिद्धों की साधना में स्त्री के विकृत रूप को नज़र अंदाज़ नहीं किया जा सकता है, ये भारत के पूर्वी भाग में विराजमान थे। इन्होंने धर्म के नाम पर अत्यधिक अंधविश्वास व दुराचार को फैलाया। सिद्धों को वज्रयानी भी कहा जाता है, "वज्रयानियों की योग–तंत्र साधनाओं में मद्य तथा स्त्रियों का विशेषतः डोमिनी, रजकी आदि का अबाध सेवन एक आवश्यक अंग था।"[3] सिद्धों ने स्त्रियों को साधना पूर्ति के लिए भोग्य वस्तु के रूप में उपयोग किया। तंत्र–मंत्र आदि इनकी साधना के प्रमुख अंग थे, "ऊँचे – नीचे कई वर्णों की स्त्रियों को लेकर मद्यपान के साजन ने बीभत्स विधान वज्रयानियों की साधना के प्रधान अंग थे। सिद्धि प्राप्त करने के लिए किसी स्त्री का (जिसे शक्ति योगिनी या महामुद्रा कहते हैं) योग या सेवन आवश्यक था।"[4] इस काल में सिद्धों का नारी के प्रति दृष्टिकोण विकृत रूप में मुखरित होता है। इन्हीं सिद्धों की परम्परा में एक नारी सिद्ध भी मानी गई है "पुरानी हिंदी में चौरासी सिद्धों में उल्लिखित कुक्करीपा को नारी सिद्ध माना गया है।"[5]

भक्तिकाल हिंदी साहित्य का 'स्वर्णयुग' माना जाता है, इस काल में सामाजिक उथल–पुथल के मध्य कवियों ने सुधारात्मक आन्दोलन लेखनी के माध्यम से सक्रिय रखा। जाति–पाति, वर्ण–व्यवस्था और रूढ़िवादिता के खिलाफ कबीर, तुलसी व मीरा आदि रचनाकारों ने आलोचनात्मक दोहों की रचना की। इस काल में नारी के प्रति दृष्टिकोण अस्पष्ट एवं अपारदर्शी रहा है,

वह मुख्यतः दो रूपों में उभर कर आयी एक 'माया' रूप में और दूसरी ओर सामान्य नारी रूप में। कबीर नारी को त्याज्य घोषित करते हुए कहते हैं –

"नारी की झाईं पड़त, अंधा होत भुजंग।
कबीरा तिनकी कौन गति,
जे नित नारी के संग।"

हिंदी साहित्य के शुरुआती दौर में मौखिक रूप से वाचन करके गीतों के रूप में विचारों की अभिव्यक्ति होती थी जिसमें कबीर, मीरा आदि प्रमुख रचनाकार शामिल है। इस काल में पुरुष रचनाकारों की अधिकता महिलाओं से काफ़ी अधिक है। मीरा के अलावा न जाने कितनी महिला संत होगी जिनके विचारों को संकलित नहीं किया गया और वे लुप्त हो गये। मीरा स्त्री–अस्मिता की परिचायक है जो सामाजिक बंधनों की परवाह न करते हुए संतों की परम्परा में शामिल हो गयी। मीरा के गीतों में सामाजिक रूढ़ियों के प्रति विद्रोह के स्वर स्पष्टता पाए जाते हैं–

" बैठि–बैठि लोकलाज खोयी अब तो
बेलि फैलि गयी कहा करिहै कोई।"
" लोक–लाज छोड़ संतों में बैठ–बैठ खोई।"

मध्यकालीन युग में समृद्ध घरों की स्त्रियों को शिक्षा एवं कला दोनों में निपुणता हासिल थी। राजघरानों में स्त्री शिक्षा की व्यवस्था हिंदू और मुस्लिम दोनों ही घरानों में रही परंतु इसकी सीमा महल के भीतर तक ही सीमित थी "बाबर की पुत्री गुलबदन बेगम सबसे शिक्षित महिला थी जिसने 'हुमायूँनामा' लिखा। वह फारसी और तुर्की जानती थी तथा कविताएं भी लिखती थी बाबर की दूसरी पुत्री गुलरूख बेगम थी कवयित्री थी।"[6]

हिंदी साहित्य में तमाम अंतर्विरोधों के बाद भी स्त्री साहित्य पर चिंतन करते हुए 'स्त्री कवि कौमुदी' की भूमिका में रसाल जी ने महिला लेखन से संबंधित महत्वपूर्ण टिप्पणी करते हुए कहा कि "हिंदी साहित्य रचना का कार्य विशेष रूप से उन्हीं देवियों ने किया है जो राजघरानों या धनी–मानी शिष्ट घरानों की सुगृहिणियॉ थीं। इसकी पुष्टि के लिए बहुत–सी रानियों की रचनाएं उपस्थित की जा सकती हैं।"[7] इस पुस्तक में महिला लेखन से संबंधित अनेक उदाहरण पाए जाते है। इनमें रसाल ने रानी वर्ग और साधारण स्त्री लेखिकाओं की रचनाओं को दो विभिन्न वर्गों में विभाजित किया है। इन महिलाओं की रचनाओं में मुख्य विशेषता इनका 'भक्ति' रस में ओत–प्रोत होना है, वे कहते है – "प्रायः सभी रानियों ने भक्ति विषयक काव्य ही रचा है। कारणवश किसी–किसी ने विप्रलंभ शृंगार संबंधी कुछ रचनाएं अवश्य कर दी हैं किंतु समुदाय में व्यापकता विशेषतया भक्ति–काव्य की ही रही है।"[8]

रीतिकाल को 'शृंगारिक काल' भी कहा जाता है क्योंकि इसमें शृंगार रस के काव्यों की अधिकता थी। कवियों और कलाकारों को राज दरबारों में आश्रय मिला जो कि उनका आर्थिक आय का स्रोत साबित हुआ परंतु इसके दुष्परिणाम उनकी विलासी रचनाओं में पाए जाते हैं। कवियों के समक्ष राजा को प्रसन्न करके आय के स्रोत को सुरक्षित करने का एक ही मार्ग था 'आश्रयदाता' के अनुरूप उसके मनोरंजन के उपयुक्त काव्यों की रचना करना। यही कारण था जिसने विलासिता को जन्म दिया और स्त्रियों को मनोरंजन की वस्तु बना कर काव्यों में केंद्रित किया जाने लगा। इस काल में स्त्रियों की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो जाती है, स्त्रियों का कामिनी रूप में चित्रण करना, उनका नख–शिख वर्णन आदि अभिलक्षणों की भरमार इस काल में अधिक है। "शृंगार के वर्णन को बहुतेरे कवियों ने अश्लीलता की सीमा तक पहुँचा दिया था इसका कारण जनता की रूचि थी जिनके लिए कर्मण्यता और वीरता का जीवन बहुत कम रह गया था।"[9] बिहारी रीतिकाल के चर्चित रचनाकार हैं, जिन्होंने नीति और शृंगार दोनों में दोहों की रचना की। इनके दोहों में शृंगारिकता की अधिकता है, ये प्रेम के उत्कृष्ट शिखर पर छा पहुँचते हैं–

" कहत नटत रीझत खिझत, मिलत खिलत लजियात।
भरे भौन में करत हैं, नैननु हीं सब बात।।"

आधुनिक काल के प्रारंभ में स्त्री–शिक्षा के लिए कई सुधारवादी आंदोलनों का उदय हुआ। ज्योतिबा फुले व पंडिता रमाबाई फुले ने नारी शिक्षा को लेकर तमाम संघर्ष किए। उन्होंने नारी शिक्षा केन्द्र खोले जिससे स्त्री शिक्षा को प्रोत्साहित किया जा सके। उनके द्वारा किए गए ये मूल्यवान प्रयास पितृप्रधान धार्मिक कट्टरपंथी समाज पर आघात करते हैं, इनके प्रयासों को बाबू नवीनचंद्र राय ने पंजाब में स्त्री शिक्षा का प्रचार करके आगे बढ़ाया। इसी धारा में राजा राममोहन राय ने सती प्रथा का विरोध करते हुए सुधारवादी आंदोलन चलाया, जो 4 दिसंबर 1829 को सती प्रथा पर रोक लगाने में सफल हुआ। इन्हीं में ईश्वरचंद्र विद्यासागर और दयानंद सरस्वती जैसे समाज सुधारक शामिल हैं जिनके अथक प्रयासों से विधवा पुनर्विवाह को मान्यता मिली। इन महान सुधारकों के कारण स्त्री को समाज में सम्मान व कुछ अधिकार प्राप्त हो सके है, सुधारवादियों द्वारा स्त्रियों के लिए किए गए इन प्रयासों पर कात्यायनी सत्यम कहती हैं "स्त्रियॉ अपनी मुक्ति के लक्ष्य के प्रति तब तक समर्पित नहीं हो सकतीं, जब तक पुरुष भी उनके आन्दोलन का समर्थन नहीं करेंगे।"10

संवत् 1931 में भारतेंदु जी ने स्त्री शिक्षा के लिए 'बालाबोधिनी' निकाली थी। यह पत्रिका स्त्रियों की शिक्षा से संबंधित थी, जिसमें उन्हें जागरूक करने के प्रयास किए गए थे। उन्हें शिक्षा के लिए प्रेरित किया जाता था, इस पत्रिका में स्त्रियों के लिए दोहे, मुकरियां, पद व निबंध आदि प्रकाशित होते रहते थे। बालाबोधिनी के मुख्य पृष्ठ पर निम्न दोहे छपते थए–

"जो हरि सोई राधिका, जो शिव सोई शक्ति।
जो नारी सोई पुरूष, या में कुछ न विभक्ति।।"

इन पंक्तियों में नारी की महत्ता और सम्मान को दर्शाया गया और यह बताया गया है कि नारी और पुरुष एक दूसरे के पूरक हैं।

स्त्री शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए साहित्यिक विधाएं जैसे नाटक, उपन्यास, कहानी और कविता आदि के जरिए लेखकों ने सक्रिय होकर योगदान दिया। इसी में पत्रिकाएं भी शामिल थी जिसमें अनेकों लेख 'स्त्री अस्मिता' को जागृत करने के उपलक्ष्य में लिखे गए। इसी धारा में मुंशी सदासुखलाल ने 'बुद्धिप्रकाश' पत्र का संपादन करते हुए स्त्री शिक्षा संबंधी विचारों को प्रेषित करते हुए लिखा "स्त्रियों में संतोष और नम्रता और प्रीत यह सब गुण कर्ता ने उत्पन्न किए है, केवल विद्या की न्यूनता है, जो यह भी हो तो स्त्रियॉ अपने सारे ऋण से चुक सकती है और लड़कों को सिखाना पढ़ाना जैसा उनसे बन सकता है वैसा दूसरों से नहीं। यह काम उन्हीं का है कि शिक्षा के कारण बाल्यावस्था में लड़कों को भूल–चूक से बचावें और सरल सरल विद्या उन्हें सिखाए।"[11]

अमूमन देखा गया है कि भारतीय समाज में स्त्रियों को 'देवी' माना जाता है, यह धारणा प्रतिस्थापित करने के पीछे का भाव उन्हें तथा कथित संस्कारों से ओत–प्रोत, मर्यादा व भावुकता के आर्दश रूप में प्रस्तुत कर स्त्रियों का अपनत्व हनन करना है। इस भावुकता व संस्कार के चलते वे अपनी अस्मिता से अनभिज्ञ रह जाती हैं। 'स्त्री विमर्श' स्त्रियों के अस्तित्व की खोज है,

इसका मुख्य उद्देश्य स्त्री को चेतना से युक्त करना है। यह विचारधारा पुरूषों को स्त्रियों का विरोधी नहीं मानती अपितु उस मानसिकता को मानती है, जो स्त्री–पुरुष में भेद करती है, जिसके फलस्वरूप स्त्रियॉ समानता का दर्ज़ा पूर्णता से पाने में आज भी सफल नहीं हो सकी। 'श्रृंखला की कड़ियाँ' में महादेवी वर्मा कहती हैं– "युगों के अनवरत प्रवाह में बड़े–बड़े साम्राज्य बह गये, संस्कृतियॉ लुप्त हो गई, जातियॉ मिट गई, संसार में अनेक असंभव परिवर्तन संभव हो गए, परन्तु भारतीय स्त्रियों के ललाट में विधि की वज्रलेखनी से अंकित अदृष्ट लिपि नहीं धुल सकी।"12

आधुनिक काल में स्त्रियों का लेखन कविता में राष्ट्रीय स्वर लेकर आगे बढ़ता है। महादेवी वर्मा, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि कवयित्रियों ने राष्ट्र–प्रेम के प्रति रचना करके समाज में एक नई धारा का प्रवाह किया। स्त्री चेतना और राष्ट्र–प्रेम का गुण सुभद्रा कुमारी चौहान की कविता 'झॉसी की रानी लक्ष्मीबाई' में स्पष्ट रूप से दिखते हैं। इसमें कवयित्री ने रानी लक्ष्मीबाई को शासक, योद्धा के रूप में प्रतिष्ठित कर वीरांगना कहा, वही मां, पत्नी के रूप में उसका ममतामयी रूप को भी चित्रित किया अतः स्त्री मुक्ति का स्वप्न वे इसी रूप में देखती है। छायावादी काव्य धारा की कवयित्री महादेवी वर्मा गद्य व पद्य दोनों में नारी– स्वातंत्र्य का समर्थन करती है। जिन कविताओं को आलोचक रहस्यवादी कहते हैं दरअसल वे स्वतंत्रता व अस्मिता के समर्थन का स्वर है, जिसे रहस्यवाद कहना उनके मौलिक संदेश पर पर्दा डालने जैसा है।

राजरानी देवी को नए काव्य का प्रमुख हस्ताक्षर माना जाता है। यह पहली लेखिका हैं जिनके काव्य में राष्ट्रीयता और स्त्री स्वतंत्रता दोनों का स्वर उद्वेलित होकर आगे बढ़ा। भारतेंदु हरिश्चंद्र के राष्ट्रीयता के स्वर पर द्वय कहते हैं दृ "प्रस्तुत शताब्दी की जिन अन्य देवियों का उल्लेख हम पहले कर आये हैं, उन तक हरिश्चंद्र के इस सन्देश की लहर नहीं पहुॅच सकी थी, इस सन्देश को सर्वप्रथम हृदयंगम करने का श्रेय श्रीमती राजरानी देवी ही को मिलना चाहिए।"[13] 'प्रमदा–प्रमोद' और 'सती–संयुक्ता' ये दो ग्रंथों की रचना राजरानी देवी द्वारा की गई है। इसमें 'सती–संयुक्ता' का कथानक ऐतिहासिक है जिसके माध्यम से कवयित्री का मुख्य उद्देश्य स्त्रियों को जागृत करना है–

"देवियों! क्या पतन अपना देखकर;
नेत्र से ऑसू निकलते हैं नहीं?
भाग्यहीना क्या स्वयं को देखकर,
पाप से कलुषित हृदय जलते नहीं?
क्या न अब कुछ देश का अभिमान है?
खो गयी सुखमय सभी स्वाधीनता।
हो रहा कितना अधिक अपमान है?"

प्रस्तुत पंक्तियों से स्पष्ट है कि स्वदेश जागरण व नारी–जागरण एक साथ पर्याय बनकर महिला लेखन में उतरने शुरू हो गए। सम्भवतः यह पहला प्रयास है, जब किसी कवयित्री ने प्रत्यक्ष भाव से स्त्रियों का आह्वान किया है।

नाट्य विधा में स्त्री विमर्श संबंधी चिंतन सर्वप्रथम जयशंकर प्रसाद ने किया स्कंदगुप्त, चंद्रगुप्त, ध्रुवस्वामिनी आदि इनके प्रमुख नाटक हैं, जिनमें स्त्री–विर्मश के स्वर गुंजते दिखते हैं। इस संबंध में विशेष रूप से 'ध्रुवस्वामिनी' में प्रसाद ने विवाह–विच्छेद व स्त्री–अस्मिता से संबंधित कुछ पहलुओं को सम्मिलित किया है। रामगुप्त जो क्लीव व कापुरूष है जिसने अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी को शत्रु के हाथ में उपहार स्वरूप देने की वस्तु समझता है, ऐसी विचारधारा पर प्रसाद चोट करते हैं और ध्रुवस्वामिनी को विवाह से निकालने के लिए संबंध–विच्छेद के उपाय को महत्व देते हैं। इस नाटक के जरिए प्रसाद ने नारी के स्वयं के निर्णय को महत्ता देकर चंद्रगुप्त से पुनर्विवाह का समर्थन किया। इस नाटक की महत्वपूर्ण स्त्री पात्र मन्दाकिनी है जिसके माध्यम से प्रसाद ने स्त्री अस्मिता की रक्षा में विचार प्रेषित किए हैं– "भगवान ने स्त्रियों को उत्पन्न करते ही अधिकारों से वंचित नहीं किया है, किन्तु तुम लोगों की दस्यु–वृत्ति ने उन्हें लूटा है।"[14]

कथा साहित्य में स्त्री–विर्मश से संबंधित अनेक उपन्यास लिखे गए हैं, जिसमें स्त्रियों की स्थिति में सुधार के विचारों का उल्लेख मिलता है। इस परम्परा में सर्वप्रथम उपन्यास पं गौरी दत्त द्वारा रचित 'देवरानी जेठानी की कहानी' है जिसमें स्त्री–शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए 'आनंदी' नामक पात्र को चित्रित किया गया है, जो शिक्षित है और सारे कार्यों को सुचारू रूप से पूरा करती है। इस उपन्यास में 'बाल–विवाह' का खण्डन व पुनर्विवाह का समर्थन किया गया। इसी धाराप्रवाह में प्रेमचंद का उपन्यास 'निर्मला' है, जिसमें 'अनमेल विवाह' और उसके दुष्परिणामों की कथा है। स्त्री केंद्रित उपन्यासों में इसका विशेष स्थान है। इसी विधा में महिला लेखिकाओ ने लिखना आरंभ किया उन्होंने अनुभूति को अभिव्यक्ति में परिवर्तित कर स्त्री जीवन को समग्रता से उजागर किया जिसका अध्य्यन करने से कई मार्मिक पहलू उजागर होते है जिसमें सामाजिक बर्बरता पर लगातार चोट की गई और इन समस्याओं से निजात पाने का उपाय शिक्षा, स्वतंत्रता, आत्मशक्ति व अस्मिता को बताया गया। इन लेखिकाओं में मन्नू भंडारी, शिवानी शर्मा, मृणाल पाण्डे, मृदुला गर्ग, कृष्णा सोबती, ममता कालिया, उषा प्रियंवदा आदि के नाम उल्लेख्य है।

निष्कर्ष

स्त्री विमर्श के केंद्र में अस्मिता संबंधी चिंतन है, यह पुरुष विरोधी नहीं अपितु पितृसत्तात्मक मानसिकता कि विरोधी है जिसके तल में असमानता का गुण है। प्रत्येक विचारधारा का जन्म उस समाज की तत्कालीन परिस्थितियों द्वारा ही होता है। आदिकाल व रीतिकाल दोनों में स्त्रियों को भोग्य वस्तु की दृष्टि से देखा गया। इस स्थिति में आमूल चूल परिवर्तन भक्तिकाल में सूफी संतों के आने से हुआ जिन्होंने परमात्म को स्त्री और खुद को पुरुष मानकर आलौकिक प्रेम के दर्शन का उदय किया। नवजागरण काल में स्त्रियों की स्थिति के सुधार में कई आंदोलन सक्रिय हुए जिनका प्रभाव लेखन पर भी पड़ा। लेखिकाओं ने अपनी आपबीती रचनाओं में अभिव्यक्त की परंतु यह स्त्री जागरण का स्वर समकालीन लेखकों में केवल यौन उन्मुक्ता तक की सिमट कर रह गया है, ऐसे में प्रश्न उठता है कि क्या 'स्त्री–विमर्श' के उद्देश्य में केवल 'यौन स्वच्छंदता' ही है? यह एक चिंतनीय प्रश्न है।

संदर्भ

1. अभयकुमार दुबे, आधुनिकता के आइने में दलित, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2014, पृष्ठ सं 413
2. प्रभा खेतान, हंस पत्रिका, (सं) राजेन्द्र यादव, अक्षर प्रकाशन, नई दिल्ली, अक्टूबर 1996 पृष्ठ 76
3. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2021 पृष्ठ 21
4. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2021 पृष्ठ 22
5. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2021 पृष्ठ 19
6. सुमन राजे, हिंदी साहित्य का आधा इतिहास, भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन 2011 पृष्ठ 135
7. डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', स्त्री कवि कौमुदी, भूमिका
8. डॉ. रमाशंकर शुक्ल 'रसाल', स्त्री कवि कौमुदी, भूमिका

9. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2021 पृष्ठ 202
10. प्रगति सक्सेना (अनु.), स्त्रियों की पराधीनता, जॉन स्टुअर्ट मिल, राजकमल 2016 पृष्ठ 30
11. रामचन्द्र शुक्ल, हिंदी साहित्य का इतिहास, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली 2021 पृष्ठ 349
12. महादेवी वर्मा, शृंखला की कड़ियां, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद 2001 पृष्ठ 22
13. गिरिजा दत्त शुक्ल बी.ए., ब्रजभूषण शुक्ल, विशारद, हिंदी काव्य की कोकिलाऍं, साहित्य मंदिर प्रकाशक प्रयाग, पृष्ठ 102
14. जयशंकर प्रसाद, ध्रुवस्वामिनी, संजय पब्लिकेशंस, आगरा पृष्ठ 47